International Journal of Applied Research 2015; 1(5): 89-93

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 3.4
IJAR 2015; 1(5): 89-93
www.allresearchjournal.com
Received: 20-03-2015
Accepted: 12-04-2015

विजेन्द्र कुमार आर्य
शोधच्छात्र, संस्कृत विभाग दिल्ली विश्वविद्यालय

Correspondence:
विजेन्द्र कुमार आर्य
संस्कृत विभाग दिल्ली विश्वविद्यालय

वाक्यपदीयकार की दृष्टि में जाति लिङ्ग अवधारणा

विजेन्द्र कुमार आर्य

भर्तृहरि ने जाति लिङ्ग है इस पर विचार अभिव्यक्त करते करते हुए वाक्यपदीय के लिङ्गसमुद्देश में कहा हैं कि कुछ विद्वान ऐसा मानते हैं कि तीन ही जातियाँ हैं और ये तीनों जातियाँ स्त्रीत्व, पुंस्त्व, नपुंसकत्वरूप से युक्त होते हुए भी परस्पर विरुद्ध नहीं हैं क्योंकि परस्पर गो महिषी आदि विरुद्ध जातियाँ हैं उनमें एक साथ समवस्थित हैं अर्थात् एक ही अर्थ में गो घट आदि के रूप में अयं अर्थः पुंल्लिॅङ्ग, इदम् वस्तु नपुसकल्लिङ्ग, इयं व्यक्तिः स्त्रील्लिङ्ग इस प्रकार का ज्ञान होता है और जब एक ही अर्थ में स्त्रीत्व, पुंस्त्व, नपुंसकत्व तीनों जातियों का ज्ञान हो रहा हो तब वे परस्पर विरुद्ध नहीं हैं। गो, महिषी आदि जातियाँ कभी भी समान अधिकरण में नहीं रहती इसलिए परस्पर विरुद्ध हैं [1]।
भाव यह है कि एक ही अर्थ में जैसे गो, घट आदि में 'अयं अर्थः', 'इदं वस्तु', 'इयं व्यक्तिः' इस प्रकार तीनों स्त्रीत्व, पुंस्त्व, नपुंसकत्व जो उक्त नहीं है उसका ज्ञान होता है, इसलिए इनमें परस्पर विरोध नहीं है। ऐसा सम्बन्ध होने से स्त्रीत्व, पुंस्त्व, नपुंसकत्व, जातियाँ विरोधी एकार्थ से सम्बद्ध गोत्व, अश्वत्व आदि जातियों के साथ एक ही आश्रय में रहती हैं और यहाँ जातियों के ज्ञान का भेद और अभिधान का भेद ये दो लिङ्ग कहे गये हैं। वह भेद गोत्व अश्वत्व आदि इन विरुद्ध जातियों के निमित्त हैं और एक भेद आश्रय में उत्पन्न नहीं होता है तथा स्त्रीत्व लिङ्ग जाति का निमित्त वाला एक भेद गोत्व अश्वत्व आदि में परस्पर विरुद्ध जाति का आश्रय होने पर भी एक रूप में ही उत्पन्न हो जाता है [2]।

लिङ्ग जातियों का गोत्व आदि जाति से अविरुद्धत्व कथन

स्त्रीत्व, पुंस्त्व, नपुंसकत्व रूप जातियों का गोत्व, अश्वत्व आदि से परस्पर विरोध नहीं है, इसे दर्शाते हुए वाक्यपदीयकार कहते हैं कि गोत्व, अश्वत्व आदि जाति परस्पर विरुद्ध हैं परन्तु इनके आश्रय में रहने वाली जो लिङ्ग जाति का ज्ञान होता है उसमें विरोध नहीं है। इनमें विरुद्धत्व इसलिए नहीं है क्योंकि ये जाति के आश्रय से गोत्व, अश्वत्व आदि में समवस्थित हैं जैसे कि हस्तिनी और घोड़ी में विरुद्ध जाति से युक्त होने पर भी स्त्रीत्व ज्ञान का समन्वय अर्थात् समान सम्बन्ध है। अतः उस स्त्रीत्व आदि लिङ्ग की जाति परस्पर विरुद्ध जाति के आश्रय द्रव्य, गुण आदि रूपों में एकार्थसमवायिनी अर्थात् एक अर्थ में समवाय सम्बन्ध से साथ रहते हैं [3]।
भाव यह है कि भिन्न जाति वाले गो, घट आदि में भी 'अयं अर्थः' इदं वस्तु' 'इयं व्यक्तिः' इस प्रकार का स्त्रीत्व आदि के आकार का ज्ञान साधारण धर्म होने के कारण गोत्व, अश्वत्व आदि अन्य जातियों में अर्थात् स्त्रीत्व आदि लिङ्ग की जातियों में एकार्थसमवाय अर्थात एक ही अर्थ में समवाय सम्बन्ध के साथ रहना है इसलिए विरोध नहीं है [4]।
लोकव्यवहार में भी अर्थ, वस्तु आदि शब्द लिङ्ग की उपाधि है अर्थात् स्त्रीत्व आदि लिङ्ग से उपलक्षित ज्ञान भिन्न जाति वाले गो, घट आदि में भी अनुगत होता है इसलिए इस प्रकार का ज्ञान शब्दप्रमाणवादियों का शब्दार्थ अर्थ है [5]।
इस प्रकार सर्वत्र द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य आदि शब्द के उस–उस लिङ्ग का ज्ञान होने से स्त्रीत्व आदि रूप उस–उस लिङ्ग की जाति के साथ सम्बन्धित माना जाता है और वही अर्थ अर्थरूप शब्द का नियत लिङ्ग का अभिधान करने वाले पुस्त्वरूप लिङ्ग जाति के साथ सम्बन्धित होता है तथा व्यक्ति आदि शब्द से कहे जाने वाले दूसरे स्त्रीत्व आदि लिङ्ग जाति के साथ सम्बन्ध का ज्ञान होता है। इसमें कोई विरोध नहीं है। जैसा कि भाव शब्द द्वारा पुंस्त्व उपाधि वाली सत्ता कही गई है। सत्ता शब्द से स्त्रीत्व उपाधि वाली वह जाति कही जाती है। सामान्य शब्द से तो नपुंसकत्व उपाधि वाली जाति कही जाती है। इसी प्रकार तद् आदि शब्दों में भी तीनों लिङ्गों के साथ सम्बन्ध मानना चाहिए [6]।
गोत्व घटत्व आदि जातियाँ भी भाव, जाति, सामान्य इन शब्दों के द्वारा तीनों लिङ्गों की उपाधियाँ हैं।

अर्थात् पुंस्त्व आदि रूप तीनों लिङ्ग उपाधि से युक्त हैं। इस प्रकार शब्द शक्ति के अनुसार ही सर्वत्र सब भावों में पुंस्त्व आदि रूप लिङ्ग जाति मानी गई है और निश्चित रूप से शब्द ही लिङ्ग तथा संख्या के साथ सम्बन्ध के कारण द्रव्यरूप होते हुए गुण, कर्म, सामान्यरूप वस्तु को भली–भांति कहते हुए गुणादि धर्म पुंस्त्व आदि रूप लिङ्ग की उपाधि वाले होने से वहाँ–वहाँ गुण आदि अर्थों में प्रवृत्त होते हैं [7]।

इसलिए 'स्त्रीत्वं', स्त्रीता, स्त्रीभावः' इस प्रकार स्त्री आदि लिङ्गों में अन्य स्त्रीत्वादि लिङ्ग के साथ सम्बन्ध शब्दशक्ति के स्वभाव के कारण मान लिया जाता है [8]।

शब्दशक्ति के अनुसार लिङ्ग जाति

शब्दशक्ति के अनुसार ही सर्वत्र लिङ्ग जाति व्यवस्थित है, जहाँ वृत्ति से अपोद्धार करने पर प्रक्रिया वाक्य अथवा जाति मात्र की विविक्षा से प्रयुक्त लौकिकवाक्य में सत्त्वभूत अर्थ के ज्ञान के लिए अन्य उपाय न होने की स्थिति में लिङ्ग कहा जाता है। वहाँ शब्दों से शब्दों के अन्वाख्यान के लिए शब्दसंस्काररूप लिङ्ग कहा गया। वहाँ लिङ्ग विवक्षित नहीं है [9]।

भर्तृहरि 'कुक्कुटस्याण्डम् इति कुक्कुटाण्डम्, मगृस्यक्षीरम् इति मृगक्षीरम्' इत्यादि के माध्यम से यहाँ प्रतिपादन करते हुए कह रहे हैं कि यह अपोद्धार में कहने पर परतंत्र के ज्ञान में अप्रधान कुक्कुट के अथवा मृग के जो पुंस्त्वरूप लिङ्ग है, वह वहाँ शब्दों से उन पुल्लिँङ्ग अर्थ को कहने वाले कुक्कुट, मृग आदि शब्दों से कुक्कुट आदि शब्दों के साधु प्रयोग के लिए स्वीकृत हैं वहाँ लिङ्ग विवक्षित नहीं है। शब्द–संस्कार मानने के अलावा कोई और उपाय न होने के कारण वहाँ लिङ्ग ही शब्दों से माना गया है। 'मृगस्यक्षीरम्' कुक्टस्याण्डम्' यहाँ स्त्रीत्व की प्रतीति तो उत्तरपदार्थ के सामर्थ्य से होती है [10]।

कुक्कुटाण्डम्' इत्यादि में कुक्कुट आदि नामपद द्वारा द्रव्यरूप अर्थ को कहने से उसके ज्ञान में अप्रधान का भी प्रक्रिया में अपोद्धारवाक्य में 'कुक्कुटस्याण्डम्' यह कहने की इच्छा होने पर जो कि लिङ्ग पुंस्त्वरूप है। यह मानने के अलावा कोई अन्य उपाय नहीं है। वह केवल शब्द को कहने का निमित्त है तथा शब्दों के द्वारा स्वीकृत है लौकिक प्रयोग में प्रक्रिया वाक्य में वह पुंस्त्वरूप लिङ्ग विवक्षित नहीं है [11]।

कुक्कुटी आदि के विषय में पुल्लिँङ्ग का भाष्य में विवेचन है ''न वास्त्रीपूर्वपदविवक्षितत्वात्'' [12] इसका अर्थ है कि पुल्लिँङ्ग है ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि स्त्रीरूप से युक्त कुक्कुटी आदि रूप की पूर्वपद की विवक्षा नहीं होती है [13]।

कुक्कुटाण्डम्, मृगाण्डम् यहाँ अण्डशब्द गौणी लक्षणा से गर्भपरक है। कुक्कुटी क्षीरम्, मृगक्षीरम् में अण्ड आदि विशेषण की कुक्कुट आदि की जाति मात्रा की विवक्षा में स्त्रीत्व की विवक्षा नहीं है। अण्ड शब्द यहाँ गौणी लक्षणा से युक्त है [14]।

अतिदिष्ट होते हुए भी यहाँ पुल्लिँङ्ग शब्द में पूर्वपद का अर्थ स्त्रीत्व है। यह यहाँ 'दर्शनीयभार्या' आदि के समान नहीं जाना जाता है फिर अतिदेश द्वारा कैसे जानते हैं, तब कहते हैं कि जहाँ स्त्रीत्व का ज्ञान होता है, वहाँ पुल्लिँङ्ग शब्द से अतिदेश कहना किया जाना चाहिए। जैसे 'दर्शनीयाभार्या' आदि में किया जाता है। यहाँ दर्शनीयाभार्यादि में स्त्रालिङ्ग उत्तरपद के साथ समानाधिकरण होने से पूर्वपद का स्त्रीरूप अर्थ जाना जाता है ऐसा पुल्लिँङ्ग शब्द का अतिदेश कहा गया है, क्योंकि प्राप्त नहीं होता था [15]।

कुकुटाण्डम्, मृगाण्डम् इस प्रकार के प्रयोग में अण्डे आदि में स्त्रीलिङ्गता का अभाव है अतः पूर्वपद के स्त्रीरूप अर्थ को नियम से नहीं ग्रहण किया जाता है ऐसी जाति मात्रा की विवक्षा में पुंस्त्व ही प्राप्त होता है, पुंस्त्व शब्द का अतिदेश ही है ऐसा मानना उचित नहीं है। लौकिक प्रक्रिया के वाक्य में शास्त्रीय अपोद्धार के विवक्षित होने पर 'कुक्कुटस्याण्डम् मृगस्यक्षीरम्' यहाँ पुल्लिँङ्ग के द्वारा बताया गया है क्योंकि लिङ्ग के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं है और वह भी सत्व को कहने वाले शब्द का संस्कार है, न कि वहाँ लिङ्ग विवक्षित है। अण्डक्षीर आदि का तो पुल्लिँङ्ग के साथ सम्बन्ध सम्भव होने से लौकिक प्रयोग में अण्ड पदार्थ के साथ सम्बन्ध के सामर्थ्य है इसलिए स्त्रीत्व ही समझना चाहिए [16]।

सर्वत्र स्त्रीत्व पुंस्त्व नपुंसकत्व व्याप्ति प्रतिपादन

स्त्री पुमान् नपुंसक इत्यादि में पदार्थ की अपोद्धार बुद्धि से कल्पित रूपों में कल्पित आकारों में स्त्री आदि द्रव्यों में उपाधि रूप में कहे जाने पर स्त्रीत्व आदि लिङ्गों में भी दूसरे स्त्रीत्व आदि लिङ्ग सम्भव हैं क्योंकि जो स्त्रीत्व आदि लिङ्गों की उस–उस द्रव्य में व्यवस्था है वह दूसरे स्त्रीत्व आदि लिङ्गो से कहे जाते हैं। जैसे कि स्त्रीत्वम्, स्त्रीता, स्त्रीभावः [17]।

अम्बाकर्त्रीकार कहते हैं कि बाह्यवस्तु के विषय वाली बुद्धि से कल्पित आकारों में, वस्तु के विषय में उपाधि रूप में समारोपित रूपों में लिङ्गों की उपाधि वाले स्त्री आदि शब्दों से कहे जाने पर स्त्रीत्व आदि लिङ्गों में भी जैसे हैं वैसे स्त्रीत्व आदि शब्द प्रतिपाद्य हैं और उनमें दूसरे लिङ्ग के साथ सम्बन्ध है तथा लिङ्ग की उपाधि वाले शब्द जिसका विषय है ऐसी लिङ्गों की व्याप्ति है। स्त्रीत्व आदि लिङ्गों की वह व्यवस्था नियम का लिङ्गों से लिङ्ग की उपाधि वाले स्त्री आदि शब्दों से प्रतिपादन किया जाता है [18]।

जब शब्द किसी को द्रव्य में अभिव्यक्त करते हैं तो वे सदा उसे किसी न किसी लिङ्ग से विशिष्ट रूप से ही प्रस्तुत करते हैं। विशेष लिङ्ग को भी विभिन्न शब्दों द्वारा तीनों लिङ्गों से युक्त प्रस्तुत किया जा सकता है। इसलिए हम कह सकते हैं कि स्त्रीत्वम्, स्त्रीता, स्त्रीभाव। यहाँ स्त्री शब्द एक ऐसे द्रव्य का वाचक है जो स्त्रीत्व से विशिष्ट है। इसके आगे लगा हुआ भाव प्रत्यय शब्दार्थ को नपुंसक लिङ्ग से विशिष्ट अभिहित करता है। शब्द के द्वारा किसी दूसरे (शब्द) में लिङ्ग का योग होता है [19]।

भाष्यमत तथा व्याख्यान

अचेतनों में लिङ्ग की व्यवस्था के लिए भाष्य में कहा गया है कि मृगतृष्णा का विषय मरुमरीचिका जैसे असत्य जलरूप से भासता है, वैसे खट्वा और वृक्ष भी असत्य स्त्रीत्व और पुंस्त्वरूप से भासित होता है [20]।

मरुस्थल में जल की प्रतीति करवाने वाली रेत की किरणों में जल नहीं होता है परन्तु जल के समान प्रतीति होती है, उसी प्रकार से खट्वा, वृक्ष आदि अचेतनों में लिङ्ग न रहते हुए भी लिङ्ग की प्रतीति होती है [21]। इसी की व्याख्या करते हुए वाक्यपदीयकार कहते हैं कि तात्पर्य यह है कि मरुस्थल में मृगतृष्णा में पूर्व जल के ज्ञान का संस्कार होता है तो जल न होने पर भी जल रूप के आकार का ज्ञान उत्पन्न होता है कि ऊपर की ओर उठती हुई ऊँची तथा चञ्चल तरङ्गों वाली यह गङ्गा पार कर ली है इसी प्रकार बाहर जिसकी सत्ता नहीं है जो कथन नहीं किया जा सकता ऐसे लिङ्गरूप लिङ्ग के भेद को बताने में हेतु मुख्य लिङ्ग के समान लोक में तारका आदि में तारका, पुष्यः, नक्षत्रम् इस प्रकार लिङ्ग को कहकर भेद बताये गये हैं [22]।

भाव यह है कि मृगतृष्णा मरु रेत पर (किरणें) मरुमरीचिका है ऐसा प्रसिद्ध है अर्थात् मृगतृष्णा का विषय मरुमरीचिका प्रसिद्ध है। वे ही लहर के समान सुशोभित होती हुई हिरणों के लिए अथवा उनके जैसे अन्य जीवों के लिए पिपासा उत्पन्न करती हैं। सूर्य की किरणें आकाश में फैलते हुए ऊपर तथा नीचे समानरूप से आक्रान्त होते हुए पानी पीने की इच्छावालों के लिए लहर के रूप वाले ज्ञान को धारण करती हैं। अतएव प्यास को उत्पन्न करने से जल के संस्कार की अधिकता होने से जल रूप (उन किरणों की) प्रतीति होती है और वे प्यास को उत्पन्न करने वाली होने के कारण तृष्णा शब्द से कही जाती है। जैसे जल की इच्छा लक्षणरूप कारण है जो न होते हुए भी मृगतृष्णा में, जल में, गर्मी से संतप्त प्यास से व्याकुल जनों के लिए जल का ग्रहण करने वाले ज्ञान को उत्पन्न करती है [23]।

इस प्रकार तारका, पुष्यः नक्षत्रम् इत्यादि अचेतनों में जिनमें लिङ्ग बाहर विद्यमान नहीं अतः लिङ्ग का व्यपदेश नहीं किया जाता है,

ऐसी स्थिति में लोक में प्रत्येक में निश्चित लिङ्ग से युक्त लिङ्ग के भेद तारक आदि शब्दों से प्रकाशित होते हैं। जैसे स्त्री आदि में लिङ्ग का निमित्त बाहर विद्यमान होता है। दूसरी स्थिति में जल होने पर भी उदक का संस्कार रहता है, वैसे चेतनों में अभ्यास के कारण अचेतनों में विद्यमान नहीं है। उनमें आरोप करने पर स्त्रीत्वादि का ज्ञान होता है [24]।

निष्कर्ष यह है कि शब्दों के नियम से बाह्यवस्तु में न होने पर भी उस शब्द स्वरूप को कहने में कोई दोष नहीं है। क्योंकि शब्द से सत् और असत् दोनों पदार्थों का समानरूप से ज्ञान लोक में प्रसिद्ध है। शब्द ही सम्यक् रूप से मिथ्या ज्ञान से प्राप्त अर्थ को समान्य रूप से कहते हैं। मरुमरीचि में जल से सादृश्य के कारण किरणों में जल का आरोप किया जाता है। परन्तु खट्वा, वृक्ष आदि अचेतनों में स्त्री, पुंस् आदि के व्यञ्जक स्तन, केश लोम आदि के समान कोई चिन्ह नहीं दिखाई देते हैं, यह शङ्का करके समाधान देते हैं कि ये विषय के समान हैं ऐसी अपेक्षा न करके जो अनादि मिथ्या ज्ञान होता है उसके अभ्यास से उत्पन्न संस्कार के कारण भ्रम (भ्रान्ति) होता है ऐसा विचार करके कि खट्वा और वृक्ष में अविद्यमान लिङ्ग स्त्रीत्व, पुंस्त्व की प्रतीति तब होती है जब स्त्रीत्व पुंस्त्व आदि कहीं पूर्वानुभूत होते हैं जब कि अब तक स्त्रीत्व आदि अनुभूत नहीं है अतः उसका खट्वा आदि में स्मरण सम्भव नहीं हो सकेगा। अतः अन्य पक्ष महाभाष्य में प्रस्तुत किया है [25]। 'गन्धर्वनगरं यथा [26]।' जैसे दूर से देखने पर कभी–कभी अन्तरिक्ष में गन्धर्वनगर देखा जाता है, परन्तु समीप जाने पर उपलब्धि नहीं होती। गन्धर्वनगर पूर्वानुभूत नहीं है अतः तत्सदृश की कल्पना नहीं की जा सकती है। फिर भी दूर से दृष्ट वस्तु गन्धर्व नगर जैसा प्रतीत होता है, अतः जैसे अचिन्त्य कारणवशाद् असत्यपदार्थ गन्धर्वनगर आदि का भान होता है, वैसे खट्वा आदि में स्त्रीत्वादि असत् पदार्थों का भान होता है [27]।

वस्तुतः जो अधिष्ठान से रहित है उसमें अध्यारोप के सम्भव न होने से यदि सूर्य की किरणों में अथवा मेघों में विविध आकारों में नगरत्व का आरोप तब वहाँ भी नगर के आकार की समानता है। इस प्रकार सम्यक् ज्ञान के लिए दूसरा उदाहरण दिया गया है ऐसा समझना चाहिए। इसके अनन्तर महाभाष्य में कहते हैं कि जैसे आकाश में सूर्य की गति है, फिर भी उसका प्रत्यक्ष दर्शन नहीं किया जा सकता है, वैसे खट्वा और वृक्ष पद को सल्लिङ्ग होने पर भी उसमें लिङ्ग की प्रतीति अशक्य है अब यहाँ भी विचार करना चाहिए आकाश में नक्षत्रमण्डल उदीयमान है, सूर्य जिस राशि पर रहेगा उसी पर उसका दर्शन होगा, जब एक राशि को छोड़कर दूसरी राशि पर जाता है, राशि के ग्रहण और परित्याग से सूर्य की गति का अनुमान किया जाता है। प्रत्यक्ष इसलिए नहीं कर सकते है कि हमारी आँखें सूर्य के प्रबल प्रकाश को देखने में समर्थ नहीं है जिससे इन्द्रिय का विषय बनने में कष्ट हो। अतः दृष्टान्त और दार्ष्टान्तिक में साम्य नहीं है [28]।

इसमें असन्तुष्ट होकर अन्य हेतु देते हैं कि जैसे वस्त्र से ढकी हुई वस्तु उपलब्ध नहीं होती है। इसलिए वस्तु नहीं है ऐसा नहीं कहा जा सकता है, अपितु वस्तु है परन्तु वस्त्र आदि से आच्छन्न होने के कारण अनुपलब्ध है। वैसे खट्वा और वृक्ष शब्द में भी लिङ्ग हैं, परन्तु आच्छन्न होने के कारण अनुपलब्ध है [29]।

भर्तृहरि ''आदित्यगतिवत्सन्न'' [30] तथा वस्त्रान्तर्हितवच्च तत्' [31] इन भाष्य के कथनों को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि व्यक्त अर्थात् चेतनों में रहने वाले स्पष्टरूप से अभिव्यक्त लिङ्गों में स्पष्टरूप से स्तन आदि दिखाई देते हैं परन्तु अचेतन में स्त्रीत्व, पुंस्त्व आदि रूप लिङ्ग जाति नहीं मानी जाती [32]। अथवा इस प्रकार भी कह सकते हैं कि अचेतनों में स्त्रीत्व आदि रूप जाति व्यक्त नहीं होती इसलिए उनमें स्त्रीत्व आदि लिङ्ग जाति नहीं मानी जा सकती। अव्यक्त चिन्हरूप जाति व्यक्त नहीं होती इसलिए उसका ज्ञान नहीं होता [33]।

अम्बाकर्त्रीकार स्पष्ट करते हैं कि व्यक्त अर्थात् स्पष्टरूप से चेतनों में स्थित लिङ्गों में स्तन केश आदि के स्त्रीत्व आदि–रूप लिङ्ग जाति का चिन्हों के स्पष्ट रूप से ज्ञान होता है। तथा अचेतन खट्वा, वृक्ष आदि में चिन्हों के अनभिव्यक्त होने से लिङ्ग जाति नहीं मानी जाती है अनभिव्यक्त चिन्हों से जाति व्यक्त नहीं होती उसका सर्वथा ज्ञान नहीं होता। प्रमाण से ज्ञात होती है उसकी स्थापना की जाती है [34]। जैसे आदित्य की गति स्थान बदलने से अनुमान की जाती है और वस्त्र से छुपी हुई वस्तु वस्त्र हटाने पर व्यवधान की निवृत्ति से साक्षात् ग्रहीत होती है परन्तु इस प्रकार की लिङ्ग जाति वृक्ष आदि में कभी उपलब्ध नहीं होती है। इस प्रकार न रहने वाली असत् लिङ्ग जाति शब्द से केवल अपनी शक्ति से ही जानी जाती है [35]।

महाभाष्य में भी कहा गया है। कि जो 'वस्त्राान्तर्हितवच्चतद्'[36] यह जो कहा गया है वह विपरीत कथन है जो वस्तु वस्त्र से ढकी हुई होती है, वस्त्र के हटाने पर उसका दर्शन होता है परन्तु खट्वा और वृक्ष में ऐसा कुछ भी उपलब्ध नहीं होता है। रथ बनाने वाले बढ़ई अपने हाथ में वसूली और आरी लेकर वृक्ष के जड़ से आरम्भ कर अग्र भाग पर्यन्त काटते और छीलते हैं परन्तु सम्पूर्ण वृक्ष और खट्वा का छेदन आदि करने पर कहीं भी लिङ्ग का दर्शन नहीं होता है, तब किस प्रमाण से निश्चय किया जाये कि लिङ्ग सत् होता है [37]।

इस भाष्य व्याख्या से यह प्रतीत होता है कि यदि अचेतन खट्वा वृक्ष आदि में लिङ्ग वस्तुस्वरूप होता है तब काटना आदि में प्राप्ति होनी चाहिए। यदि प्राप्ति नहीं होती है तो वस्तुस्वरूप खट्वा, वृक्ष आदि में लिङ्ग नहीं है। प्रमाण से सिद्ध वस्तु की अनुपलब्धि में हेतु है। जो कि शास्त्रों में पाँच प्रकार के वर्णित किये गये हैं [38]।

लिङ्गसत्ता प्रत्यक्ष न होने पर विरुद्धत्व विचार

खट्वा, वृक्ष आदि शब्दों में लिङ्ग की अनुपलब्धि होती है, अतः संदेह होता है कि लिङ्ग है अथवा नहीं। इसी प्रसङ्ग में कहते हैं कि लिङ्ग तथा लिङ्ग के चिन्हों के अत्यन्त अदृष्ट होने पर भी लिङ्ग की सत्ता है यदि यह कहते हैं तो प्रत्यक्ष से विरोध होता है जैसे शशशृङ्गादि के न दिखाई देने पर भी यदि यह कहे कि उनकी सत्ता है तो इस विषय में निश्चय नहीं होता है तो इस प्रकार प्रत्यक्ष से शशशृङ्गादि के विषय न होने के साथ उनका विरोध है। लिङ्ग की सत्ता अत्यंत अदृष्ट है ऐसा मानने वाले कहते हैं कि अत्यंत अदृष्ट लिङ्ग सत् नहीं है इसलिए लिङ्ग को असत् ही जानना चाहिए [39]। अचेतन खट्वा, वृक्ष आदि में लिङ्ग की सत्ता को मानकर लिङ्ग के चिन्हों की प्राप्ति नहीं होती, इस प्रकार लिङ्ग की सदा अनुपलब्धि प्राप्त होती है ऐसा मानने वालों को अदृश्य शशविषाण आदि की अनुपलब्धि में प्रमाण अभावरूप ही मिलता है, जो शशविषाण आदि के प्रति प्रमाण माना जा सकता है। इस प्रकार अभावरूप शशविषाण आदि में सत्त्व की शङ्का होने लगेगी तो इस प्रसङ्ग में अत्यधिक न दिखाई देने पर भी उन शशविषाण आदि में सत्ता नहीं है इसका निश्चय नहीं होता क्योंकि वहाँ भी कह सकते हैं कि शशविषाण है लेकिन इन्द्रिय की शक्तिहीनता के कारण दिखाई नहीं देता है। यह कह सकते हैं कि अत्यन्त अदृष्ट शशशृङगादि हैं परन्तु प्रत्यक्ष से दर्शन नहीं होता है यदि ऐसा मानेंगे तो इसमें इन्द्रिय दुर्बलता कारण मानी जानी लगेगी और जब इन्द्रिय दुर्बलता कारण बनेगी तो अलीकपदार्थों शशशृङ्गादि की सत्ता सिद्ध होने लगेगी।

इस सन्दर्भ में अम्बकर्त्रीकार महाभाष्य के 'अन्योऽन्यसंश्रयं त्वेतत्' [40] इस वाक्य को स्पष्ट करते हुए कहते है कि खट्वा वृक्ष आदि अचेतनों में लिङ्ग के कार्य टाप् आदि होते हैं जिसमें लिङ्ग का अनुमान होता है ऐसा भाष्य में कहा गया है जैसे प्रकाश से उसके कारण का अर्थात् ज्योति का अनुमान किया जाता है वैसे ही लिङ्ग के कार्य टाप् आदि से लिङ्ग का अनुमान करते हैं।

लिङ्ग का अनुमान होने पर लिङ्ग के कार्य टाप् आदि स्त्री प्रत्यय होते हैं और लिङ्ग के कार्य टाप् आदि होने पर लिङ्ग का अनुमान होता है यह परस्पर आश्रय है। इसे ही वाक्यपदीयकार ने कहा है कि ऐसा शब्द जिसमें लिङ्ग दिखाई नहीं देता यदि वह लिङ्ग के

कार्य टाप् आदि स्त्री प्रत्ययों से रहित है तो इस शब्द से लिङ्ग का अनुमान करना संभव नहीं है। अनुमान से पहले ही लिङ्ग के कार्य टाप् आदि स्त्री प्रत्ययों के निमित्त रूप लिङ्ग के दिखाई देने पर लिङ्ग के अनुमान की क्या आवश्यकता है क्योंकि साध्य की सिद्धि अनुमिति ज्ञान के प्रति प्रतिबन्धक होती है [41]।

लोक में खट्वा आदि शब्द प्रमाण से सिद्ध हैं और व्याकरण में स्त्री, पुरुष, नंपुसक यह जो कहा गया है वह खट्वा आदि के शब्दसंस्कार के लिए हैं। उसी प्रकार खट्वा, वृक्ष आदि अचेतन में यदि लिङ्ग है तो दूसरे प्रमाण से सिद्ध है तब खट्वा आदि शब्द से टाप् आदि कार्य करके लिङ्ग का अनुमान करना व्यर्थ है। लिङ्ग का दर्शन होने से लिङ्ग का ही दर्शन लिङ्ग की अनुमिति में प्रतिबन्धक है। टाप् आदि की उत्पत्ति में पूर्व लिङ्ग का दर्शन नहीं है तब प्रत्यय आदि विधीयमान कार्य निमित्त होने से 'स्त्रीलिङ्ग, पुल्लिँङ्ग, नपुंसकलिङ्ग इत्यादि में लिङ्ग को मानना प्रमाणिक नहीं है अतः उचित नहीं है।

भाष्य में 'अन्योऽन्यसंश्रयं त्वेतत्' को इस प्रकार स्पष्ट किया गया है कि ज्योति और प्रकाश से कार्यकारणभाव स्पष्ट है क्योंकि ज्योति और प्रकाश प्रत्यक्ष है परन्तु खट्वा आदि शब्दों में कभी लिङ्ग का ग्रहण नहीं होता है। अतः टाप् में लिङ्गरूप कार्य का अनुमान नहीं किया जा सकता है। कार्यकारणभाव मानने में खट्वा आदि शब्दों में अन्योन्याश्रय भी होगा। उसको दर्शाते हुए महाभाष्यकार कहते हैं कि स्त्री आदि लिङ्ग का ज्ञान करके शब्द प्रयोग होगा तथा शब्द प्रयोग से लिङ्गज्ञान होगा, अतः शब्द और ज्ञान का अन्योन्याश्रय यहाँ स्पष्ट होता है और अन्योन्याश्रय कार्य नहीं होते हैं [42]।

इस प्रकार खट्वा आदि शब्दों से लिङ्ग की अनुमिति असंभव है तथा लौकिक लिङ्ग स्तन, केशादि पुंव्यञ्जन (पुल्लिँङ्ग चिन्ह) आदि रूप अचेतन खट्वा, वृक्ष आदि में अव्याप्त हैं।

सन्दर्भ

1. तिस्त्रो जातयः एवैताः केषाञ्चित् समवस्थिताः।
   अविरुद्धा विरुद्धाभिर्गोमहिष्यादिजातिभिः।। वा.प.3.13,पृ.133
2. एकस्मिन्नर्थे ... जायत इति। अम्बा.वा.प.लि., पृ.3. 718
3. हस्तिन्यां वडवायां स्त्रीति बुद्धिः समन्वयः।
   अतस्तां जातिमिच्छन्ति द्रव्यादिसमवायिनीम्।वा.प.3.13,पृ. 33
4. भिन्नजातीयेष्वपि गोघटादिषु 'अयं अर्थः' 'इदं वस्तुः 'इयं व्यक्तिःइतिस्त्रयाद्याकारबुद्धेरनुगमाज्जात्यन्तरैर्गोत्वाश्वत्वादिभि : स्त्रीत्वादिलिङ्गजातीनामविरुद्ध एकार्थसमवायः।

   μ अम्बा.वा.प.लि. पृ.–719
5. लोकव्यवहारे अर्थवस्त्वादिशब्दात् लिङ्गोपाधेः स्त्रीत्वादिलिङ्गोपलक्षितस्य प्रत्ययस्य भिन्न जातीयेष्वपि गोघटादिषु अनुगतस्य दर्शनात् शब्दप्रमाणकानां शब्दार्थोऽर्थ इति।। अम्बा.वा.प.लि., पृ.–719
6. सर्वत्रगुण .... वाच्यः।। अम्बा.वा.प.लि., पृ.–719
7. गोत्वघटादिरूपा ... प्रवर्तन्ते।। अम्बा.वा.प.लि., पृ.–720
8. तथा च''स्त्रीत्वं, स्त्रीता, स्त्रीभावः'' इत्येवं स्त्रयादिषु लिङ्गेष्वप्यपरःस्त्रीत्वादिरूपालिङ्गैयोगः शब्दशक्तिस्वभावात् कल्प्यते इति वक्ष्यत इति।। अम्बा.वा.प.लि., पृ. – 720
9. शब्दशक्त्यनुसारेणैव .... विवक्षितम्। अम्बा.वा.प.लि., पृ.–720
10. परतन्त्रस्य यल्लिङ्गमपोद्धारे विवक्षिते।
    तत्रासौ शब्दसंस्कारः शब्दैरेव व्यपाश्रितः।। वा.प.3.13,पृ.133
11. कुक्कुटाण्डमित्यादौ .... अविवक्षितमित्यर्थः। अम्बा.वा.प.लि. पृ. 720–721
12. म.भा. वार्तिक 6–3–42
13. न वा पुंवद्वचनं कर्तव्यम्, स्त्रीरूपस्य कुक्कुट्यादिरूपस्य पूर्वपदस्य अविवक्षितत्वादिति। अम्बा.वा.प.लि., पृ.–721
14. कुक्कुटाण्डम्, मृगाण्डम् = अण्डशब्दोऽत्र गौण्या लक्षणया गर्भपरः कुक्कुटक्षीरम्, मृगक्षीरम् इत्यादौ अण्डादिविशेषणस्य कुक्कुटादेर्जातिमात्राविवक्षायां स्त्रीत्वस्याविवक्षितता। अम्बा.वा.प.लि., पृ.–721
15. अतिदिष्टोऽपि .... अप्राप्तत्वात्।। अम्बा.वा.प.लि., पृ.–721
16. इह त्वण्डादेः ... स्त्रीत्वावगतिरिति।। वही. पृ.–721
17. बुद्धया कल्पितरूपेषु लिङ्गेष्वपि च सम्भवः।
    स्त्रीत्वादीनां व्यवस्था हि सा लिङ्गैर्व्यपदिश्यते।। वा.प.3 13, पृ.–134
18. बर्हिवस्तूनां .... प्रतिपाद्यते। अम्बा.वा.प.लि., पृ.–722
19. भावप्रत्ययान्तरैलिङ्गाभिधयिभिः .... लक्ष्यते।। वही, पृष्ठ–722
20. असत्तु मृगतृष्णावत्। म.भा. 4–1–3
21. खट्वावृक्षादिष्वचेतनेष्वसदपि लिङ्ग मृगतृष्णाजनिकासु मरुमरीचिषु असज्जलवत् प्रतीयत इति।
    अम्बा. वा.प.लि., पृ.–723
22. यथा सलिलनिर्भासा मृगतृष्णासु जायते।
    जलोपलब्ध्यनुगुणाद् बीजाद् बुद्धिर्जलेऽसति।।
    वा.प.–3 13, पृ.–135
23. अयं भावःमृगतृष्णा....बुद्धिरुपजायते। अम्बा.वा.प.लि., पृ. 723
24. तथैवाव्यपदेश्येभ्यो हेतुभ्यस्तारकादिषु।
    मुखेभ्य इव लिङ्गेभ्यो भेदा लोके व्यवस्थिताः।।
    वा.प.–3 13, पृ. 135
25. शब्दानां नियमाद् ... दृष्टान्तान्तरमुक्तं भाष्ये।
    अम्बा.वा.प.लि., पृ.–724
26. म.भा.– 4–पृ. – 21
27. तद्यथा गन्धर्वनगराणि दूरतो दृश्यते, उपसृत्य च नोपलभ्यन्ते, तद्वत्खट्वावृक्षयोः रूपलिङ्गद्रष्टव्यम्।।

    μ म.भा.–4 पृ.–22
28. 'आदित्यगतिवत्सन्न' यथा आदित्यस्य गतिः सती नोपलभ्यते, तद्वत्खट्वावृक्षयोः सल्लिङ्गं नोपलभ्यते।

    μ म.भा.–4 –पृ.–22
29. 'वस्त्रान्तर्हितवच्च तद्' यथा वस्त्रा ....। म.भा.– 4, पृ.–22
30. म.भा. वार्तिक– 4 पृ.–22
31. वही– 4 पृ.–22
32. व्यक्तेषु व्यक्तरूपाणां स्तनादीनां तु दर्शनात्।
    अव्यक्तव्यञ्जनाव्यक्तेर्जातिर्न परिकल्पयते।।
    वा.प.–3 पृ. 136
33. यद्वा अचेतने ..जातेरव्यक्तेरप्रतीतेरिति। अम्बा.वा.प.लि.पृ.725
34. व्यक्तेषु स्फुटेषु .... सर्वथैवाप्रतीते।। वही. पृ.–725
35. यथाऽऽदित्यगतिर्देशान्तरप्राप्त्याऽनुमीयते,वस्त्रा ... प्रत्याय्यते। वही., पृ.–726
36. महाभाष्य. वार्तिक–4 , पृ.–22
37. विषम उपन्यासः – वस्त्रान्तर्हितानि द्रव्याणि ... नोपलभ्यते इति।। म.भा.–4, पृ. 22–23
38. अस्माद् भाष्यादिदं ..इत्यादिनोक्ताः। अम्बा.वा.अ.लि., पृ.–726
39. अत्स्तत्वं च प्रतिज्ञाय सदादर्शनमिच्छितः।
    अत्यन्तादर्शने न स्यादसत्त्वं प्रति निश्चयः।।
    वा.प.4 13, पृ.–726
40. म.भा. – 4–1–3
41. लोके प्रमाणात्...अनुपन्नमिति। अम्बा.वा.प.लि., पृ.–727–728
42. अन्योऽन्यसंश्रयं त्वेतत् अन्योऽन्यसंश्रयं त्वेतद् भवति–स्त्रीकृतः शब्दः, शब्दकृतञ्च ...।
    म.भा.–4 , पृ.–24

सन्दर्भ–ग्रन्थ सूची वर्णानुक्रमानुसारिणी

अभ्यंकर के.वी.लिमये वाक्यपदीयम्, भण्डारकर ओरियण्टल, रिसर्च इंस्टिट्यूट, पूना – 1975

अय्यर, सुब्रह्मण्य भर्तृहरि हि. अनु. रामचन्द्र द्विवेदी राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 1981

वाक्यपदीय पदकाण्ड ,हेलाराज टीका प्रकीर्ण प्रकाश डेकन कॉलेज पूना, 1973

वाक्यपदीय ब्रह्मकाण्ड स्वोपज्ञवृत्ति पद्धति डेकन कॉलेज, पूना, 1966

आप्टे, वामन शिवराम संस्कृत हिन्दी कोश, न्यु भारतीय बुक कॉरपोरेशन, दिल्ली, 2009

ईश्वर कृष्ण सांख्यकारिका तत्त्वकौमुदी सहित सं. रामशङ्कर भट्टाचार्य, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, 1967

उपाध्याय बलदेव काशी की पाण्डित्य परम्परा विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1983

संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास, उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान, लखनऊ, 2001

कौण्डभट्ट वैयाकरणभूषणसार, सम्पादक प्रभाकर मिश्र, वाराणसी, श्री सम्वत्, 2029

त्रिपाठी, रामप्रसाद पाणिनीय व्याकरणे प्रमाण समीक्षा, वा. सं. विश्वविद्यालय, वाराणसी, 1972

त्रिपाठी, रामसुरेश संस्कृत व्याकरणदर्शन, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1972

त्रिवेदी,क्षेमकरणदास गोपथ ब्राह्मण, सं. प्रज्ञा देवी एवं मेधा देवी, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान,दिल्ली ,1993

द्विवेदी, कपिलदेव अर्थविज्ञान और व्याकरणदर्शन हिन्दुस्तान एकेडमी, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद, 1951

नागेश वैयाकरणसिद्धांतमंजूषा, सम्पा. भागीरथ प्रसाद त्रिपाठी सं. सं. वि.,वाराणसी,1977

पतञ्जलि व्याकरण महाभाष्य ,प्रदीप – उद्योत सहित सम्पा. – गुरुप्रसाद शास्त्री, भाग–1,2,3,4,5,6, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली – 2001

पाणिनीय अष्टाध्यायीसूत्रपाठ, सम्पादक – पं. ब्रह्मदत्त जिज्ञासु, रामलाल कपुर ट्रस्ट – 2001

धातुपाठ, रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़, सोनीपत, हरियाणा।

लिङ्गानुशासन और शान्तनव फिटसूत्र, स.– विरजानन्द देवकरणिः, हरियाणा साहित्य संस्थान, गुरुकुलझज्जर, जिला रोहतक,1977

उणादिकोष,सम्पा.सत्यव्रत शास्त्री, सत्यसदन, चन्देरिया, चित्तौड़गढ़, राजस्थान 1997

पाण्डेय, रामाज्ञा व्याकरणदर्शन प्रतिमा,सं.रामगोविन्द शुक्ल,सं. सं. वि. विद्या., वाराणसी, 1979

भर्तृहरि वाक्यपदीय ब्रह्मकाण्ड, ;पं. सूर्य नारायण शुक्ल कृत भाव प्रदीप टीका सं. रामगोविन्द शुक्ल, काशी सं.सि. वाराणसी

वाक्यपदीय ब्रह्मकाण्ड सं.शिवशङ्कर अवस्थी, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, 1990

मिश्र, केशव तर्कभाषा सं. श्री निवासशास्त्री साहित्यभण्डार मेरठ, 2011

मीमांसक, युधिष्ठिर संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास ,भा. .1. वाराणसी, सम्वत्, 2019

वर्मा, सत्यकाम व्याकरण की दार्शनिक भूमिका, मुन्शीराम मनोहरलाल, दिल्ली, 1971

भाषातत्व और वाक्यपदीय मुन्शीराम मनोहरलाल, दिल्ली 1968

वामन, जयादित्य काशिका, ;न्यास पदमंजरी संहिता सम्पादक, डॉ. जयशङ्कर लाल त्रिपाठी एवं डॉ. सुधाकर मालवीय, तारा बुक एजेन्सी, वाराणसी, 1988

विश्वबन्धु ऋग्वेद, विश्वेश्वरानन्द, वैदिक – शोध संस्थान – होशियारपुर, 1965

शर्मा, रघुनाथ वाक्यपदीय ब्रह्मकाण्ड, अम्बाकर्त्री टीका एवं स्वोपज्ञवृत्ति सहित. 1963

वाक्यपदीय वाक्यकाण्ड, अम्बाकर्त्री टीका स्वोपज्ञ, पुण्यराज, प्रकाश, सहित, 1968

वाक्यपदीय पदकाण्ड, अम्बाकर्त्री टीका, हेला. प्रकाश टीका, जाति, द्रव्य, सम्बन्ध सुमुद्देश पर ,1974

वाक्यपदीय वृत्तिसमुद्देश, ;अम्बाकर्त्री टीका, हेला. प्रकाश टीका सहित, 1977

वाक्यपदीय पदकाण्ड, ;अम्बाकर्त्री टीका, हेला. प्रकाश टीका, भूयोद्रव्य, गुण, दिक्, साधन, क्रिया, काल, पुरुष, संख्या, उपग्रह, लिङ्ग समुद्देशों पर, प्रकाशन – सं. सं.वि. वाराणसी, 1979

वाक्यपदीय पाठभेदनिर्णय, स.स.वि. वाराणसी, 1980

शास्त्री, रामशरण पाणिनीय व्याकरणशास्त्रे, वैशेषिक तत्त्व मीमांसा – दिल्ली।

English Books

Cardona George – Panini (A Survey of Research) Motilal Banarsidas, Delhi, 1997

Iyer, K.A.S. – Bhartrhari (A Study of the Vakyapadiya In the light of ancient (commentaries) Deccan College, Poona, 1969

Iyer, K.A.S. – English Translation of the Vakyapadiya of Bhartrhari with Vartti, Poona, 1969.

Shastri, Gourinath The Philosophy of Word and Meaning, Sanskrit College, Calcutta, 1951

Tola Fernand and Bhartrhari (Language, Thought and Reality)

Carmen Dragonetti (Proceedings of the International Seminar), Delhi, December 12-14, 2003), Edited by Mithilesh Chaturvedi) Moti Lal Banarasidas, Delhi.